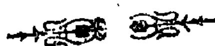
जैन-समाजका ह्रास क्यों ?

उत्पादन-शक्ति-ह्रास,
बहिष्कारकी विषैली प्रथा
नव-दीक्षा-प्रणाली बन्द

लेखक—

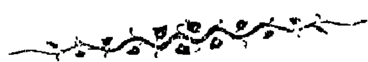
अयोध्याप्रसाद गोयलीय



प्रकाशक—

हिन्दी विद्या मन्दिर

सदर बाज़ार डिप्टीगंज, देहली।



प्रथमावृत्ति
२०००

फाल्गुण वि० सं० १९९५
वीर-निर्वाण सं० २४६५
फरवरी १९३९

मूल्य
छः पैसा

नेमचन्द जैन (आडीटर)के प्रबन्धसे वीर-प्रेस आफ इण्डिया न्यू देहलीमें छपा

दो शब्द

यह निबन्ध "जैन-समाज क्यों मिट रहा है" शीर्षकसे "अनेकान्त" के द्वितीय वर्षकी १, २, ३, किरणोंमें क्रमशः प्रकाशित हो चुका है। नाम परिवर्तन और कुछ संशोधन करके अब यह पुस्तकाकार छपा है।

—लेखक



धन्यवाद

यह पुस्तक श्रीमान् लाला तनसुखरायजी जैन (मैनेजिङ्ग डायरैक्टर तिलक बीमा कं० लि० न्यू देहली) की आर्थिक सहायतासे प्रकाशित की जारही है। पुस्तकका मूल्य इसीलिये रक्खा गया है, ताकि इसका उचित उपयोग हो सके। पुस्तककी बिक्रीसे जो सहायता प्राप्त होगी, पुनः उससे कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की जासकेगी। लालाजीको इस उदारताके लिये धन्यवाद।

—व्यवस्थापक



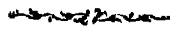


ला० तनसुखराय जैन।

जैन-समाज

का

ह्रास क्यों ?



जैन-समाज अपनेको उस पवित्र एवं शक्तिशाली धर्मका अनुयायी बतलाता है, जो धर्म भूले-भटके पथिकों-दुराचारियों तथा कुमार्गरतोंका सन्मार्ग-प्रदर्शक था, पतितपावन था, जिस धर्ममें धार्मिक-सङ्कीर्णता और अनुदारताके लिये स्थान नहीं था, जिस धर्मने समूचे मानव-समाजको धर्म और राजनीतिके समान अधिकार दिये थे, जिस धर्मने पशु-पक्षियों और कीट-पतंगों तकके उद्धारके उपाय बताये थे, जिस धर्मका अस्तित्व ही पतितोद्धार एवं लोकसेवा पर निर्भर था, जिस धर्मके अनुयायी चक्रवर्तियों, सम्राटों और आचार्योंने करोड़ों म्लेच्छ, अनार्य तथा असभ्य कहे जाने वाले प्राणियोंको जैन-धर्ममें दीक्षित करके निरामिष-भोजी, धार्मिक तथा सभ्य बनाया था, जिस धर्मके प्रसार करनेमें मौर्य, ऐल, राष्ट्रकूट,

चाल्युक्य, चोल, होयसल और गंगवंशी राजाओंने कोई प्रयत्न उठा न रक्खा था, और जो धर्म भारतमें ही नहीं, किन्तु भारतके बाहर भी फैल चुका था। उस विश्व-व्यापी जैन-धर्मके अनुयायी वे करोड़ों लाल आज कहाँ चले गये ? उन्हें कौनसा दरिया बहा ले गया ? अथवा कौनसे भूकम्पसे वे एकदम पृथ्वीके गर्भमें समा गये ?

जो गायक अपनी स्वर-लहरीसे मृतकोंमें जीवन डाल देता था, वह आज स्वयं मृत-प्राय क्यों है ? जो सरोवर पतितों-कुष्ठियोंको पवित्र बना सकता था, आज वह दुर्गन्धित और मलीन क्यों है ? जो समाज सूर्यके समान अपनी प्रखर किरणोंके तेजसे संसारको तेजोमय कर रहा था, आज वह स्वयं तेजहीन क्यों है ? उसे कौनसे राहूने ग्रस लिया है ? और जो समाज अपनी कल्पतरु-शाखाओंके नीचे सबको शरण देता था, वही जैन-समाज आज अपनी कल्पतरु शाखा काटकर बचे-खुचे शरणागतोंको भी कुचलनेके लिये क्यों लालायित हो रहा है ?

यही एक प्रश्न है जो समाज-हितैषियोंके हृदयको खुरच-खुरचकर खाये जारहा है। दुनियाँ द्वितीयाके चन्द्रमाके समान बढ़ती जारही है, मगर जैन-समाज पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान घटता जारहा है। आवश्यकतासे अधिक बढ़ती हुई संसारकी जन-संख्यासे घबड़ाकर अर्थ-शास्त्रियोंने घोषणा की है कि "अब भविष्यमें और सन्तान उत्पन्नकरना दुख-दारिद्रयको निमंत्रण देना है।" इतने ही मानव-समूहके लिये स्थान तथा भोज्य-पदार्थका मिलना दूभर होरहा है, इन्हींकी पूर्तिके लिये आज संसारमें संघर्ष मचा हुआ है और मनुष्य-मनुष्यके रक्तका प्यासा बना हुआ है। यदि इसी तेज़ीसे संसारकी जन-संख्या बढ़ती रही तो, प्रलयके आनेमें

कुछ भी विलम्ब न होगा। अर्थशास्त्रियोंको संसारकी इस बढ़ती हुई जन-संख्यासे जितनी चिन्ता हो रही है, उतनी ही हमें घटती हुई जैन-जन-संख्यासे निराशा उत्पन्न हो रही है। भारतवर्षकी जन-संख्याके निम्न अंक इस बातके साक्षी हैं :—

भारतवर्षकी सम्पूर्ण जन-संख्या—		*केवल जैन-जन-संख्या—*
सन् १८८१	२५३८९६३३०	१५०००००
सन् १८९१	२८७३१४६७१	१४१६६३८
सन् १९०१	२९४३ ६१०५६	१३३४१४०
सन् १९११	३१५१ ५६३९६	१२४८१८२
सन् १९२१	३२८९ ४२४८०	११७८५९६
सन् १९३१	३५२८ ३७७७८	१२५१३४०

उक्त अङ्कोंसे प्रकट होता है कि इन ४०वर्षों में भारतकी जन-संख्या ९८९४१४४८ बढ़ी। जबकि इन्हीं ४० वर्षोंमें ब्रिटिश-जर्मन युद्ध, प्लेग, इन्फ्लूएँजा, तूफान, भूकम्प-ज़लज़ले बाढ़ वगैरहमें ८-९ करोड़ भारतवासी स्वर्गस्थ होगये, तब भी उनकी जन-संख्या १० करोड़के लगभग बढ़ी। और यदि इन असामयिक मृतकोंकी ८-९ करोड़ संख्या भी जोड़ली जाय तो ४० वर्षोंमें भारतवर्षकी जन-संख्या १¾ (पौने दो गुणी) बढ़ी। और इसी हिसाबसे जैन-जन-संख्या भी सन् ३३ में १५ लाखसे बढ़कर पौने दोगुणी सवा २६ लाख होनी चाहिये थी, किन्तु वह पौने दोगुणी होना तो दूर, मूल से भी घटकर पौनी रह गई !

तब क्या जैनी ही सबके सब लाम पर चले गये थे ? इन्हींको चुन-चुनकर प्लेग आदि बीमारियोंने चट कर लिया ? इन्हींको बाढ़ बहा ले

गई ? और भूकम्पके धक्कोंसे भी ये ही रसातलमें समा गये ? यदि नहीं तो ११ लाख बढ़नेके बजाय ये तीन लाख और घटे क्यों ?

इस 'क्यों' के कई कारण हैं। सबसे पहले जैन-समाजकी उत्पादन-शक्तिकी परिक्षा करें तो सन् १९३१ की मर्दुमशुमारीके अंकोंसे प्रकट होगा कि जैन-समाज में :—

विधवा	...	...	...	१३४२४५
विधुर	...	...	...	५२९०३
१ वर्षसे १५ वर्ष तकके क्वारे लड़के			...	१६६२३५
१५ वर्षसे ४० „	„	„	...	८६२७५
४० वर्षसे ७० „	„	„	...	९८९४
१ वर्षसे १५ वर्ष तककी क्वारी लड़कियाँ			...	१९४८७२
१५ वर्षसे ४० „	„	„	...	९८९४
४० वर्षसे ७० „	„	„	...	७८७
१ वर्षसे १५ वर्ष तकके विवाहित स्त्री-पुरुष			...	३६७१७
१५ वर्षसे ४० „	„	„	...	४२०२९४
४० वर्षसे ७० „	„	„	...	१३९२२४
			कुल योग	१२५१३४०

१२५१३४० स्त्री-पुरुषोंमें १५ वर्षकी आयुसे लेकर ४० वर्षकी आयु-के केवल ४२०२९४ विवाहित स्त्री-पुरुष हैं, जो सन्तान उत्पादनके योग्य कहे जासकते हैं। उनमें भी अशक्त, निर्बल और रुग्ण चौथाईके लगभग अवश्य होंगे, जो सन्तानोत्पत्तिका कार्य नहीं कर सकते। इस तरह तीन लाखको छोड़कर ९५१३४० जैनोंकी ऐसी संख्या है जो वैधव्य, कुमारावस्था

बाल्य और वृद्धावस्थाके कारण सन्तानोत्पादन शक्तिसे वंचित है। अर्थात् समाजका पौन भाग सन्तान उत्पन्न नहीं कर रहा है।

यदि थोड़ी देरको यह मान लिया जाय कि १५ वर्षकी आयुसे कमके ३६७१७ विवाहित दुधमुँहे बच्चे बच्चियाँ कभी तो सन्तान-उत्पादन योग्य होंगे ही, तो भी बात नहीं बनती। क्योंकि जब ये इस योग्य होंगे तब ३० से ४० की आयु वाले विवाहित स्त्री-पुरुष, जो इस समय सन्तानोत्पादनका कार्य कर रहे हैं, वे बड़ी आयु होजानेके कारण उस समय अशक्त हो जाएँगे। अतः लेखा ज्यों का त्यों रहता है। और इस पर भी कह नहीं जासकता कि इन अबोध दूल्हा-दुल्हिनोंमें कितने विधुर तथा वैधव्य जीवनको प्राप्त होंगे ?

जैन–समाजमें ४० वर्षसे कमके आयु वाले विवाह योग्य २५५५१० क्वारे लड़के और इसी आयुकी २०४७५६ क्वारी लड़कियाँ हैं। अर्थात् लड़कोंसे ५०७५४ लड़कियाँ कम हैं। यदि सब लड़कियाँ क्वारे लड़कोंसे ही विवाही जाएं, तोभी उक्त संख्या क्वारे लड़कोंकी बचती है। और इस पर भी तुर्रा यह है कि इनमेंसे आधीसे भी अधिक लड़कियाँ दुबारा तिबारा शादी करने वाले अधेड़ और वृद्ध हड़प कर जाएँगे, तब उतने ही लड़के क्वारे और रह जाएँगे। अतः ४० वर्षकी आयुसे कमके ५०७५४ बचे हुए क्वारे लड़के और ४० वर्षकी आयुसे ७० वर्ष तककी आयुके १२४५५ बचे हुए क्वारे लड़के लड़कियोंका विवाह तो इस जन्ममें न होकर कभी अगले ही जन्मोंमें होगा ?

अब प्रश्न होता है कि इस मुट्ठीभर जैनसमाजमें इतना बड़ा भाग क्वारा क्यों है ? इसका स्पष्टीकरण सन् १९१४ की दि० जैन डिरेक्टरीके

निम्न अंकोंसे हो जाता है :—

दि० जैन समाज-अन्तर्गत जातियाँ	कुल संख्या	दि० जैन समाज-अन्तर्गत जातियाँ	कुल संख्या
१ अग्रवाल	६७१२१	१९ पोरवाल	११५
२ खण्डेलवाल	६४७२६	२० बुढ़ेले	५६६
३ जैसवाल	१०९६५	२१ लोहिया	६०२
जैसवाल दसा	९४	२२ गोलसिंघारे	६२९
४ परवार	४१९९६	२३ खरौआ	१७५०
५ पद्मावती पुरवाल	११५९१	२४ लमेचु	१९७७
६ परवार-दसा	९	२५ गोलापूरब	१०६४०
७ परवार-चौसके	१२७७	२६ गोलापूरब पचविसे	१९४
८ पल्लीवाल	४२७२	२७ चरनागेर	१९८७
९ गोलालारे	५५८२	२८ धाकड़	१२७२
१० विनैक्या	३६८५	२९ कठनेरा	६९९
११ गान्धी जैन	२०	३० पोरवाड़	२८५
१२ ओसवाल	७०२	३१ पोरवाड़ जाँगड़ा	१७५६
१३ ओसवाल-बीसा	४५	३२ पोरवाड़जाँगड़ बीसा	५४०
१४ गंगेलवाल	७७२	३३ धवल जैन	३९
१५ बड़ेले	१६	३४ कासार	९९८७
१६ बरैया	१५८४	३५ बघेरवाल	४३२४
१७ फतहपुरिया	१३५	३६ अयोध्यावासी(तारनपंथ)	२९९
१८ उपाध्याय	१२१६	३७ अयोध्यावासी	२९३

दि० जैन समाज-अन्तर्गत जातियाँ	कुल संख्या	दि० जैन समाज-अन्तर्गत जातियाँ	कुल संख्या
३८ लाड-जैन	३८५	५८ नागदा (दसा)	८६७
३९ कृष्णपक्षी	६२	५९ चित्तौड़ा (दसा)	३०६
४० कामभोज	७०५	६० चित्तौड़ा (बीसा)	५५१
४१ समैय्या	११०७	६१ श्रीमाल	७३८
४२ असाटी	४६७	६२ श्रीमाल–दसा	४२
४३ दशा-हूमड़	१८०७९	६३ सेलवार	४३३
४४ विसा हूमड़	२५५५	६४ श्रावक	८४६७
४५ पंचम	३२५५६	६५ सादर(जैन)	११२४१
४६ चतुर्थ	६९२८५	६६ बोगार	२४३१
४७ बदने	५०१	६७ वैश्य (जैन)	२४२
४८ पापड़ीवाल	८	६८ इन्द्र (जैन)	११
४९ भवसागर	८०	६९ पुरोहित	१५
५० नेमा	२८३	७० क्षत्रिय (जैन)	८७
५१ नारसिंहपुरा (बीसा)	४४७२	७१ जैन दिगम्बर	१०९३९
५२ नरसिंहपुरा (दस्सा)	२५९३	७२ तगर	८
५३ गुर्जर	१५	७३ चौघले	१६०
५४ सैतवाल	२०८८९	७४ मिश्रजैन	२५
५५ मेवाड़ा	२१५८	७५ संकवाल	४०
५६ मेवाड़ा (दसा)	२	७६ खुरसाले	२४०
५७ नागदा (बीसा)	२६५४	७७ हरदर	२३६

दि० जैन समाज-अन्तर्गत जातियाँ	कुल संख्या	दि० जैन समाज-अन्तर्गत जातियाँ	कुल संख्या
७८ ठगर बोगार	५३	८३ सुकर जैन	८
७९ ब्राह्मण जैन	७०४	८४ महेश्री जैन	१६
८० नाई-जैन	४	८५ और कई भिन्न-भिन्न जातियोंके नवदीक्षित जैन	७३
८१ बढ़ई-जैन	३		
८२ पोकरा-जैन	२		४५०५८४

उक्त कोष्टकके अंक केवल दिगम्बरजैन सम्प्रदायकी उपजातियों और संख्याका दिग्दर्शन कराते हैं। दिगम्बर-जैन समाजकी तरह श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी अनेक जाति-उपजातियाँ हैं। जिनके उल्लेखकी यहाँ आवश्यकता नहीं। कुल १२ लाखकी अल्पसंख्या वाले जैनसमाजमें यह सैकड़ों उपजातियाँ कोढ़में खाजका काम देरही हैं। एक जाति दूसरी जातिसे रोटी-बेटी व्यवहार न करनेके कारण निरन्तर घटती जारही है।

उक्त कोष्टकके अंक हमारी आँखोंमें उँगली डालकर बतला रहे हैं कि नाई, बढ़ई, पोकरा, सुकर, महेश्री और अन्य जातिके नवदीक्षित–जैनोंको छोड़कर दि०जैनसमाजमें ६४० तो ऐसे जैन कुलोत्पन्न स्त्री-पुरुष बालकोंकी संख्या है जो १८ जातियोंमें विभक्त हैं, जिनकी जाति संख्या घटते-घटते १०० से कम २०, ११, ८ तथा २ तक रह गई है। और ३८५९ ऐसे स्त्री पुरुष, बालकोंकी संख्या है जो १४ जातियोंमें विभक्त हैं। और जिनकी जाति–संख्या घटते घटते ५०० से भी कम १०० तक रह गई है।

भला जिन जातियोंके व्यक्तियोंकी संख्या समस्त दुनियामें २, ८, २०, ५०, १००, २०० रह गई हो, उन जातियोंके लड़के लड़कियोंका उसी

जातिमें विवाह कैसे हो सकता है ? कितनी ही जातियोंमें लड़के अधिक और कितनी ही जातियोंमें लड़कियाँ अधिक है। योग्य सम्बन्ध तलाश करनेमें कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, इसे वे ही जान सकते हैं जिन्हें कभी ऐसे सम्बन्धोंसे पाला पड़ा हो। यही कारण है कि जैनसमाज में १२४५५ लड़के लड़कियाँ तो ४० वर्षकी आयुसे ७० वर्ष तककी आयुके क्वारे हैं। जिनका विवाह शायद परलोकमें ही हो सकेगा।

जिस समाजके सीने पर इतनी बड़ी आयुके अविवाहित अपनी दारुण कथाएँ लिये बैठे हों, जिस समाजने विवाहक्षेत्रको इतना संकीर्ण और संकुचित बना लिया हो, कि उसमें जन्म लेने वाले अभागोंका विवाह होना ही असम्भव बन गया हो; उस समाज की उत्पादन-शक्तिका निरन्तर ह्रास होते रहनेमें आश्चर्य ही क्या है ? जिस धर्मने विवाहके लिये एक विशाल क्षेत्र निर्धारित किया था, उसी धर्मके अनुयायी आज अज्ञानवश अनुचित सीमाओंके बन्धनोंमें जकड़े पड़े हैं, यह कितने दुःखकी बात है !! क्या यह कलियुगका चमत्कार है ?

जैनशास्त्रोंमें वैवाहिक उदारताके सैंकड़ों स्पष्ट प्रमाण पाये जाते हैं। यहाँ पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ कृत "जैनधर्मकी उदारता" नामक पुस्तकसे कुछ अवतरण दिए जाते हैं, जो हमारी आँखें खोलनेके लिये पर्याप्त हैं :—

भगवज्जिनसेनाचार्यने आदिपुराणमें लिखा है कि—

शूद्राशूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचच्च ताः॥

अर्थात्—शूद्रको शूद्रकी कन्यासे विवाह करना चाहिये, वैश्य, वैश्य-

की तथा शूद्रकी कन्यासे विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्णकी तथा वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्णकी तथा शेष तीन वर्णोंकी कन्याओंसे विवाह कर सकता है।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजातियोंमें (अन्तर्जातीय) विवाह करनेमें धर्म-कर्मकी हानि समझते हैं, उनके लिये क्या कहा जाय ? जैनग्रंथोंने तो जाति-कल्पनाकी धज्जियाँ उड़ादी हैं। यथा—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे
कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥

अर्थात्—इस अनादि संसारमें कामदेव सदासे दुर्निवार चला आरहा है। तथा कुलका मूल कामनी है। तब इसके आधार पर जाति-कल्पना करना कहाँ तक ठीक है ? तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार से कामदेवकी चपेटमें आगया होगा ? तब जाति या उसकी उच्चता नीचताका अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्यने उत्तर पुराणके पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कही है—

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात् ॥४६१॥

अर्थात्—इस शरीरमें वर्ण या आकारसे कुछ भेद दिखाई नहीं देता है। तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों में शूद्रोंके द्वारा भी गर्भाधानकी प्रवृति देखी जाती है। तब कोई भी व्यक्ति अपने उत्तम या उच्च वर्णका अभिमान कैसे कर सकता है ? तात्पर्य यह है कि जो वर्तमानमें सदाचारी है वह उच्च है और दुराचारी है वह नीच है।

इस प्रकार जाति और वर्णकी कल्पनाको महत्व न देकर जैनाचार्योंने आचरण पर ज़ोर दिया है।

जैनपुराणों कथा-ग्रंथों या प्रथमानुयोगके शास्त्रोंको उठाकर देखने पर, उनमें पद पद पर वैवाहिक उदारता नज़र आएगी। पहले स्वयंवर-प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुलकी परवाह न करके गुणका ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे या बड़े कुल वालेको गुण पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी, उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश-पुराणमें इस सम्बन्धमें स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचितं स्वयंवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयंवरे ॥११-७१॥

अर्थात्—स्वयंवरगत कन्या अपने पसन्द वरको स्वीकार करती है चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयंवरमें कुलीनता-अकुलीनताका कोई नियम नहीं होता है। जैनशास्त्रोंमें विजातीय विवाहके भी अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। नमूनेके तौरपर कुछका उल्लेख नीचे किया जाता है:—

१—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने ब्राह्मण-कन्या नन्दश्रीसे विवाह किया था और उससे अभयकुमार पुत्र उत्पन्न हुआ था (भवतो विप्रकन्यायां सुतोऽभूदभयाह्वयः) बादमें विजातीय माता-पिता से उत्पन्न अभयकुमार मोक्ष गया (उत्तरपुराण पर्व ७४ श्लोक ४२३ से २६ तक)

२—राजा श्रेणिक (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री धन्यकुमार 'वैश्य' को दी थी। (पुण्यास्रव कथाकोष)

३—राजा जयसेन (क्षत्रिय) ने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी प्रीतिंकर

(वैश्य) को दी थी । इनके ३६ वैश्य पत्नियाँ थीं और एक पत्नी राजकुमारी वसुन्धरा भी क्षत्रिया थी । फिर भी वे मोक्ष गये । (उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लोक ३४६–४७)

४—कुवेरप्रिय सेठ वैश्य ने अपनी पुत्री क्षत्रिय-कुमारको दी थी ।

५—क्षत्रिय राजा लोकपालकी रानी वैश्य थी ।

६—भविष्यदत्त(वैश्य) ने अरिंजय (क्षत्रिय) राजाकी पुत्री भविष्यानुरूपासे विवाह किया था तथा हस्तिनापुरके राजा भपालकी कन्या स्वरूपा (क्षत्रिय) को भी विवाहा था । (पुण्यास्रव कथा)

७—भगवान् नेमिनाथके काका वसुदेव (क्षत्रिय) ने म्लेच्छ कन्या जरा से विवाह किया था । उससे जरत्कुमार उत्पन्न होकर मोक्ष गया था । (हरिवंशपुराण)

८—चारुदत (वैश्य) की पुत्री गंधर्वसेना वसुदेव (क्षत्रिय) को विवाही थी । (हरि०)

९—उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीवने भी अपनी दो कन्यायें वसुदेवकुमार (क्षत्रिय) को विवाही थीं । (हरि०)

१०—ब्राह्मण कुलमें क्षत्रिय मातासे उत्पन्न हुई कन्या सोमश्रीको वसुदेवने विवाहा था । (हरिवंशपुराण सर्ग २३ श्लोक ४९–५१)

११—सेठ कामदत्त वैश्य ने अपनी पुत्री बंधुमतीका विवाह वसुदेव क्षत्रियसे किया था । (हरि०)

१२—महाराजा उपश्रेणिक (क्षत्रिय) ने भीलकन्या तिलकवतीसे विवाह किया और उससे उत्पन्न पुत्र चिलाती राज्याधिकारी हुआ । (श्रेणिक चरित्र)

१३—जयकुमारका सुलोचनासे विवाह हुआ था। मगर इन दोनोंकी एक जाति नहीं थी।

१४—शालिभद्र सेठने विदेशमें जाकर अनेक विदेशीय एवं विजातीय कन्याओंसे विवाह किया था।

१५–अग्निभूत स्वयं ब्राह्मण था, उसकी एक स्त्री ब्राह्मणी थी और एक वैश्य थी। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७१—७२)

१६–अग्निभूतकी वैश्य पत्नीसे चित्रसेना कन्या हुई और वह देवशर्मा ब्राह्मणको विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ७३)

१७—तद्भव मोक्षगामी महाराजा भरतने ३२ हजार म्लेच्छ कन्याओंसे विवाह किया था।

१८—श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपने भाई गजकुमारका विवाह क्षत्रिय कन्याओंके अतिरिक्त सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री सोमासे भी किया था। (हरिवंशपुराण ब्र० जिनदास ३४-२६ तथा हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्यकृत)

१९—मदनवेगा 'गौरिक' जातिकी थी। वसुदेवजीकी जाति 'गौरिक' नहीं थी। फिर भी इन दोनोंका विवाह हुआ था। यह अन्तर्जातीय विवाहका अच्छा उदाहरण है। (हरिवंशपुराण जिनसेनाचार्यकृत)

२०—सिंहक नामके वैश्यका विवाह एक कौशिक-वंशीय क्षत्रिय-कन्यासे हुआ था।

२१—जीवंधर कुमार वैश्य थे, फिर भी राजा गजेन्द्र (क्षत्रिय) की कन्या रत्नवतीसे विवाह किया। (उत्तरपुराण पर्व ७४, श्लोक ६४६-५१)

२२—राजा धनपति (क्षत्रिय) की कन्या पद्माको जीवंधरकुमार [वैश्य] ने विवाहा था। (क्षत्रचूड़ामणि लम्ब ५, श्लोक ४२-४६)

२३—भगवान् शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवें तीर्थंकर हुए हैं। उनकी कई हज़ार पत्नियाँ तो म्लेच्छ कन्यायें थी। (शान्तिनाथपुराण)

२४—गोपेन्द्र ग्वालाकी कन्या सेठ गन्धोत्कट (वैश्य) के पुत्र नन्दा-के साथ विवाही गई। (उत्तरपुराण पर्व ७५ श्लोक ३००)

२५—नागकुमारने तो वेश्या पुत्रियोंसे भी विवाह किया था। फिर भी उसने दिगम्बर मुनिकी दीक्षा ग्रहणकी थी (नागकुमार चरित्र) इतना होनेपर भी वे जैनियोंके पूज्य रह सके।

जैनशास्त्रोंमें जब इस प्रकारके सैंकड़ों उदाहरण मिलते हैं, जिनमें विवाह-सम्बन्धके लिये किसी वर्ण जाति या धर्म तकका विचार नहीं किया गया है और ऐसे विवाह करनेवाले स्वर्ग, मुक्ति तथा सद्गतिको प्राप्त हुए हैं; तब एक ही वर्ण, एक ही धर्म और एक ही प्रकारके जैनियों-में पारस्परिक सम्बन्ध करने में कौनसी हानि है, यह समझ में नहीं आता।

इन शास्त्रीय प्रमाणोंके अतिरिक्त ऐसे ही अनेक ऐतिहासिक प्रमाण भी मिलते हैं। तथा—

१—सम्राट चन्द्रगुप्तने ग्रीक देशके (म्लेच्छ) राजा सैल्युकसकी कन्यासे विवाह किया था। और फिर भद्रबाहु स्वामीके निकट दिगम्बर मुनिदीक्षा लेली थी।

२—आबू मन्दिरके निर्माता तेजपाल प्राग्वाट (पोरवाल) जातिके थे, और उनकी पत्नी मोढ़ जातिकी थी। फिर भी वे बड़े धर्मात्मा थे। २१ हज़ार श्वेताम्बरों और ३ सौ दिगम्बरोंने मिलकर उन्हें 'संघपति'

पदसे विभूषित किया था। यह संवत् १२२० की बात है।

३—मथुराके एक प्रतिमा लेखसे विदित है कि उसके प्रतिष्ठाकारक वैश्य थे। और उनकी धर्मपत्नी क्षत्रिय-कन्या थी।

४—जोधपुरके पास घटियाला ग्रामसे संवत् ९१८ का एक शिलालेख मिला है। कक्कुक नामके व्यक्तिके जैनमन्दिर, स्तम्भादि बनवानेका उल्लेख है। यह कक्कुक उस वंशका था जिसके पूर्व पुरुष ब्राह्मण थे और जिन्होंने क्षत्रिय-कन्यासे शादी की थी। (प्राचीन जैन लेख-संग्रह)

५—पद्मावती पुरवालों (वैश्यों) का पाँडों (ब्राह्मणों) के साथ अभी भी कई जगह विवाह सम्बन्ध होता है। यह पाँडे लोग ब्राह्मण हैं और पद्मावती पुरवालोंमें विवाह-संस्कारादि कराते थे। बादमें इनका भी परस्पर बेटी-व्यवहार चालू हो गया।

६—क़रीब १५० वर्ष पूर्व जब बीजावर्गी जातिके लोगोंने खंडेलवालोंके समागमसे जैन-धर्म धारण करलिया तब जैनेतर बीजावर्गियोंने उनका बहिष्कार कर दिया और बेटी व्यवहारकी कठिनता दिखाई देने लगी। तब जैन बीजावर्गी लोग घबड़ाने लगे। उस समय दूरदर्शी खंडेलवालोंने उन्हें सान्त्वना देते हुये कहा कि "जिसे धर्म-बन्धु कहते हैं उसे जाति-बन्धु कहनेमें हमें कुछभी संकोच नहीं होता है। आज ही से हम तुम्हें अपनी जातिके गर्भमें डालकर एक रूप किये देते हैं।" इस प्रकार खंडेलवालोंने बीजावर्गियोंको मिलाकर बेटी-व्यवहार चालू कर दिया। (स्याद्वादकेसरी गुरु गोपालदासजी बरैया द्वारा संपादित जैनमित्र वर्ष ६ अङ्क १ पृष्ठ १२ का एक अंश।)

७—जोधपुरके पाससे संवत् ९०० का एक शिलालेख मिला है।

जिससे प्रगट है कि सरदारने जैन-मन्दिर बनवाया था । उसका पिता क्षत्रिय और माता ब्राह्मणी थी ।

८—राजा अमोघवर्षने अपनी कन्या विजातीय राजा राजमल्ल सतवाद को विवाही थी" । *(जैनधर्मकी उदारता पृ० ६३—७१)*

जिस धर्ममें विवाहके लिये इतना विशाल क्षेत्र था, आज उसके अनुयायी संकुचित दायरेमें फँसकर मिटते जारहे हैं । जैनधर्मको माननेवाली कितनी ही वैभवशाली जातियाँ, जो कभी लाखोंकी संख्यामें थीं, आज अपना आस्तित्व खो बैठी हैं, कितनी ही जैन-समाजसे पृथक हो गई हैं और कितनी ही जातियोंमें केवल दस-दस पाँच-पाँच प्राणी ही बचे रहकर अपने समाजकी इस हीन-अवस्थापर आँसू बहा रहे हैं ॥

भला जिन बच्चोंके मुँहका दूध नहीं सूख पाया, दान्त नहीं निकल-पाये, तुतलाहट नहीं छूटी, जिन्हें धोती बान्धनेकी तमीज़ नहीं, खड़े होनेका शऊर नहीं और जो यह भी नहीं जानते कि ब्याह है क्या बला ? उन अबोध बालक-बालिकाओंको बज्र हृदय माता-पिताओंने क्या सोचकर विवाह-बन्धनमें जकड़ दिया ? यदि उन्हें समाजके मरनेकी चिन्ता नहीं थी, तब भी अपने लाड़ले बच्चों पर तो तरस खाना था । हा ! जिस समाज-ने ३६७१७ दुधमुँहे बच्चे-बच्चियोंको विवाह बन्धनमें बाँध दिया हो, जिस समाजने १८७१४८ स्त्री-पुरुषों को अधिकाँशमें बाल-विवाह वृद्ध-विवाह और अनमेल विवाह करके वैधव्य-जीवन व्यतीत करनेके लिये मजबूर करदिया हो और जिस समाजका एक बहुत बड़ा भाग संकुचित क्षेत्र होनेके कारण अविवाहित ही मर रहा हो, उस समाजकी उत्पादन-शक्ति कितनी क्षीण दशाको पहुँच सकती है, यह सहजमें ही अनुमान लगाया

जा सकता है ।

उत्पादन शक्तिका विकास करनेके लिये हमें सबसे प्रथम अनमेल तथा वृद्ध विवाहोंको बड़ी सतर्कतासे रोकना चाहिये । क्योंकि ऐसे विवाहों द्वारा विवाहित दम्पत्ति प्रथम तो जनन-शक्ति रखते हुए भी सन्तान-उत्पन्न नहीं कर सकते, दूसरे उनमेंसे अधिकाँश विधवा और विधुर होजानेके कारण भी सन्तान-उत्पादन कार्यसे वंचित हो जाते हैं । साथ ही कितने ही विधवा विधुर बहकाये जानेपर जैन-समाजको छोड़ जाते हैं ।

अतः अनमेल और वृद्धविवाहका शीघ्रसे शीघ्र जनाज़ा निकाल देना चाहिये और ऐसे विवाहोंके इच्छुक भले मानसोंका तीव्र विरोध करना चाहिये । साथ ही, जैनकुलोत्पन्न अन्तर्जातियोंमें विवाहका प्रचार बड़े वेगसे करना चाहिये, जिससे विवाहयोग्य क्वारे लड़के लड़कियाँ क्वारे न रहने पाएँ ।

जब जैन समाजका बहुभाग विवाहित होकर सन्तान-उत्पादनका कार्य करेगा और योग्य सम्बन्ध होनेसे युवतियाँ विधवा न होकर प्रसूता होंगी, तब निश्चय ही समाजकी जन संख्या बढ़ेगी ।

जैन-समाजकी उत्पादन-शक्ति ही क्षीण हुई होती, तो भी ग़नीमत थी, यहाँ तो बच्चे-खुचोंको भी कूड़े-करकटकी तरह बुहार कर बाहर फेंका जारहा है ! कूड़े-करकटको भी बुहारते समयदेख लेते हैं कि कोई क़ीमती अथवा कामकी चीज़ तो इसमें नहीं है; किन्तु समाजसे निकालते समय इतनी सावधानता भी नहीं बर्ती जाती । जिसके प्रति भी चौधरी-चुक्कड़ायत, पंच-पटेल रुष्ट हुए अथवा जिसने तनिक सी भी जाने अनजानेमें भूल की, वही समाजसे पृथक् कर दिया जाता है । इस प्रकार

जैन-समाजको मिटानेके लिये दुधारी तलवार काम कर रही है। एक ओर तो उत्पादन-शक्ति क्षीण करके समाजरूपी सरोवरका स्रोत बन्द कर दिया गया है, दूसरी ओर जो बाक़ी बचा है उसे बाहर निकाला जा रहा है। इससे तो स्पष्ट जान पड़ता है कि जैन-समाजको तहस-नहस करनेका पूरा संकल्प ही कर लिया गया है।

जो धर्म अनेक राक्षसी अत्याचारोंके समक्ष भी सीना ताने खड़ा रहा, जिस धर्मको मिटानेके लिये दुनिया भरके सितम ढाये गये, धार्मिक स्थान नष्ट-भ्रष्ट कर दिये गये, शास्त्रोंको जला दिया गया, धर्मानुयाइयों-को औटते हुये तेलके कढ़ाओंमें छोड़ दिया गया, कोल्हुओंमें पेला गया, दीवारों में चुन दिया गया, उसका पड़ोसी बौद्ध-धर्म भारतसे खदेड़ दिया गया—पर वह जैन-धर्म मिटायेसे न मिटा। और कहता रहा —

कुछ बात है जो हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा॥

—इक़बाल

जो विरोधियोंके असंख्य प्रहार सहकर भी अस्तित्व बनाये रहा, वहीं जैन-धर्म अपने कुछ अनुदार अनुयाइयोंके कारण ह्रासको प्राप्त होता जा रहा है। जिस सुगन्धित उपवनको कुल्हाड़ी न काट सकी, उसी कुल्हाड़ी-में उपवनके वृक्षके बेंटे लग कर उसे छिन्न-भिन्न कर रहे हैं; सच है—

बहुत उम्मीद थी जिनसे हुए वह महर्बां क़ातिल।
हमारे क़त्ल करने को बने खुद पासबां क़ातिल॥

—अज्ञात

सामाजिक रीति-रिवाजका उल्लंघन करने वालेके लिये जाति-बहिष्कारका दण्ड शायद कभी उपयोगी रहा हो, किन्तु वर्तमानमें तो यह प्रथा बिल्कुल ही अमानुषिक और निन्दनीय है। जो कवच समाजकी रक्षाके लिये कभी अमोघ था, वही कवच भारस्वरूप होकर दुर्बल समाज-को मिट्टीमें मिला रहा है।

अपराधीको दण्ड दिया जाय, ताकि स्वयं उसको तथा औरोंको नसीहत हो और भविष्यमें वैसा अपराध करनेका किसीको साहस न हो—यह तो बात कुछ न्याय-संगत जँचती भी है; किन्तु अपराधीकी पीढ़ी दर-पीढ़ी सहस्रों वर्ष वही दण्ड लागू रहे—यह रिवाज बर्बरताका द्योतक और मनुष्य-समाजके लिये अवश्य ही कलंक है।

'नानी दान करे और धेवता स्वर्ग में जाय'—इस नियमका कोई समर्थन नहीं कर सकता। खासकर जैनधर्म तो इस नियमका पक्का विरोधी है। जैनधर्मका तो सिद्धान्त है कि, जो जैसे शुभ-अशुभ कर्म करता है वही उसके शुभ-अशुभ फलका भोगने वाला होता है *, किसी अन्यको उसके शुभ-अशुभ कर्मका फल प्राप्त नहीं हो सकता। यही नियम प्रत्यक्ष भी देखनेमें आता है कि जिसको जो शारीरिक या मानसिक कष्ट है, वही उसको सहन करता है—कुटुम्बीजन इच्छा होने पर भी उसे बटा नहीं सकते। राज्य-नियम भी यही होता है, कि कितना ही बड़ा अपराध क्यों न किया गया हो, केवल अपराधीको सज़ा दी जाती है। उसके जो कुटुम्बी अपराध में सम्मलित नहीं होते, उन्हें दण्ड नहीं दिया जाता है।

* अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

किन्तु हमारे समाजका चलन ही कुछ और है। जिसने अपराध किया, वह मर कर अपने आगे के भवोंमें शुभकर्म करके चाहे महान् पदको प्राप्त क्यों न होगया हो, तो भी उसके वंशमें होने वाले हज़ारों वर्षों तक उसके वंशज उसी दण्डके भागी बने रहेंगे; जिन्हें न अपराधका पता है और न यही मालूम है कि किसने कब अपराध किया था ? और चाहे वे कितने ही सदाचारी धर्म-निष्ठ क्यों न रहें, फिर भी वे निम्न श्रेणीके ही समझे जाएँगे—बलासे उनके आचरण और त्यागकी तुलना उनसे उच्च कहे जाने वालोंसे न हो सके, फिर भी वे अपराधीके वंशमें उत्पन्न हुए हैं, इसलिये लाख उत्तम गुण होने पर भी जघन्य हैं। क्या खूब !!

जैन-समाजमें प्राचीन और नवीन दो तरहके ऐसे मनुष्य हैं, जो जातिसे पृथक समझे जाते हैं। प्राचीन तो वे हैं जो दस्सा और विनैकवार आदि कहलाते हैं, और न जाने कितनी सदियोंसे न जाने किस अपराध के कारण जाति-च्युत चले आते हैं। नवीन वे हैं जो अपनी किसी भूल या पंच-पटेलों की नाराज़गीके कारण जाति से पृथक होते रहते हैं।

प्राचीन जातिच्युतोंके तो धीरे-धीरे समाज बन गये हैं, वह अपनी जातियोंमें रोटी-बेटी व्यवहार कर लेते हैं और उन्हें विशेष असुविधा प्राप्त नहीं होती; किन्तु नवीन जातिच्युतोंको बड़ी आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है उनके तो गांवोंमें बमुश्किल कहीं-कहीं इकेले-दुकेले घर होते हैं। उनसे पुश्तैनी जाति-च्युत तो रोटी-बेटी व्यवहार करते नहीं। क्योंकि उनकी स्वयं जातियां बनी हुई हैं और वह भी रूढ़ि के अनुसार दूसरी जातिसे रोटी-बेटी व्यवहार करना अधर्म समझते हैं। और नवीन जाति-च्युतोंकी कोई जाति इतनी शीघ्र बन नहीं सकती; उनकी पहली

रिश्तेदारियां सब उसी जातिमें होती हैं, जिससे उन्हें पृथक् कर दिया गया है;अतः सब नवीन जाति-च्युत यही चाहते हैं कि हमारा रोटी-बेटी-व्यवहार सब जाति-सन्मानितोंमें ही हो, जातिच्युतोंसे व्यवहार करनेमें हेटी होगी। जाति वाले उनसे व्यवहार करना नहीं चाहते और वह जाति-च्युत, जाति सम्मानितोंके अलावा जातिच्युतोंसे व्यवहार नहीं करना चाहते। अतः इसी परेशानीमें वह व्याकुल हुए फिरते हैं।

कालेपानी और जीवनपर्यन्त सज़ाकी अवधि तो २० वर्ष है; और अपराधी नेकचलनीका प्रमाण दे तो, १४ वर्षमें ही रिहाई पासकता है; किन्तु सामाजिक दण्डकी कोई अवधि नहीं। जिस तरह संसारके प्राणी अनन्त हैं उसी प्रकार हमारे समाजका यह दण्ड भी अनन्त है। पाप करने वाला प्राणी कोटानिकोट वर्षोंकी यातना सहकर ७वें नरकसे निकल कर मोक्ष जासकता है, किन्तु उसके वंशज उसके अपराधका दण्ड सदैव पाते रहेंगे—यही हमारे समाजका नियम है!

कुछ लोग कहा करते हैं कि जिस प्रकार उपदंश, उन्माद, मृगी, कुष्ट आदि रोग वंशानुक्रमिक चलते हैं, उसी प्रकार पाप का दण्ड चलता है। किन्तु उन्हें यह ध्यान रखना चाहिये कि रोग के साथ यदि पापका सम्बन्ध होता तो जिस पापके फल स्वरूप रावण नर्क में गया, उसीके अनुसार उसके भाई-पुत्रोंको भी नरकमें जाना पड़ता, किन्तु ऐसा न होकर वह मोक्ष गये। उसके हिमायती बनकर पापका पक्ष लेकर लड़े, किन्तु फिर भी वह तप करके मोक्ष गये। यदि रोग और पापका एकसा सम्बन्ध होता तो पिता नरक और पुत्र स्वर्ग न जाता। रोगोंका रक्तसे सम्बन्ध है, जिसमें भी वह रक्त जितना पहुंचेगा, उसमें उसके रोगी कीटाणु भी उतने

ही प्रवेश कर जाएँगे। रक्त वंश में प्रवाहित होता रहता है, इसलिये रोग भी वंशानुगत चलता रहता है। पापका रक्तसे सम्बन्ध नहीं, यह आत्माका स्वतन्त्र कर्म है, अतः वही उसके फलाफलको भोग सकता है, दूसरा नहीं।

जैन-धर्ममें तो पापीसे नहीं, पापीके पापसे घृणा करनेका आदेश है। पापी तो अपना अहित कर रहा है इसलिये वह क्रोधका नहीं, अपितु दया-का पात्र है। जो उसने पाप किया है, उसका वह अपने कर्मानुसार दण्ड भोगेगा ही, हम क्यों उसे सामाजिक दण्ड देकर धार्मिक अधिकारसे रोकें और क्यों अपनी निर्मल आत्माको कलुषित करें ? पापीको तो और अधिक धर्म-साधन करनेकी आवश्यकता है। धर्म-विमुख कर देनेसे तो वह और भी पापके अंधेरे कूपमें पड़ जायेगा जिससे उसका उद्धार होना नितान्त मुश्किल है। तभी तो जैन-धर्मके मान्य ग्रन्थ पंचाध्यायी में लिखा है:—

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात् ।
भ्रष्टानां स्वपदात् तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥

अर्थात्—धर्म-भ्रष्ट और पद-च्युत प्राणियोंको दया करके धर्ममें लगा देना, उसी पदपर स्थिर कर देना—यही स्थितिकरण है।

जिस धर्मने पतितोंको, कुमार्गरतोंको, धर्मविमुखोंको, धर्ममें पुनः स्थिर करनेका आदेश देते हुए, उसे सम्यक्दर्शनका एक अंग कहा है और एक भी अंग-रहित सम्यक्दृष्टि हो नहीं सकता; फिर क्यों उसके अनुयायी जाति-च्युत करके, धर्माधिकार छीनकर, धर्म-विमुख करके अपनेको मिथ्यादृष्टि बना रहे हैं और क्यों धर्ममें विघ्न-स्वरूप होकर

अन्तराय कर्म बाँध रहे हैं ? जब कि जैन-शास्त्रोंमें स्पष्ट कथन है कि :—

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्म-किल्विषात् ।

धर्मके प्रभावसे—धर्म सेवनसे—कुत्ता भी देव हो सकता है, अधर्मके कारण देव भी कुत्ता हो सकता है। चाण्डाल और हिंसक पशुओंका भी सुधार हुआ है, वे भी निर्मल भावनाओं और धर्म-प्रेमके कारण सद्गतियोंको प्राप्त हुए हैं। जैनधर्म तो कहलाता ही पतित-पावन है। जिसके णमोकार मंत्र पढ़नेसे सब पापों का नाश हो सकता है, गन्धोदक लगाने मात्रसे अपवित्रसे अपवित्र व्यक्ति पवित्र हो सकता है, जिनके यहां हज़ारों कथायें पतितोंके सन्मार्ग पर आनेकी बिखरी पड़ी हैं और *जिनके धर्मग्रन्थोंमें चींटीसे लेकर मनुष्य तककी आत्माको मोक्षका* अधिकारी कहकर समानताका विशाल परिचय दिया है। जो जीव नरक-में हैं, किन्तु भविष्यमें मोक्षगामी होंगे, उनकी प्रतिदिन जैनी पूजा करते हैं। कब किस मनुष्यका विकास और उत्थान होने वाला है— यह कहा नहीं जासकता। तब हम बलात् धर्म-विमुख रखकर—उसके विकासको रोककर—कितना अधर्म-संचय कर रहे हैं ?

अशरण-शरण, पतितपावन जैन-धर्ममें भूले भटके पतितों, उच्च और नीच सभीके लिये द्वार खुला हुआ है। मनुष्य ही नहीं—हाथी, सिंह, श्रृगाल, शूकर, बन्दर, न्योले जैसे जीव-जन्तुओंका भी जैन-धर्मोपदेशसे उद्धार हुआ है। पतितों और कुमार्गरत मनुष्योंकी जैनग्रन्थोंमें ऐसी अनेक कथायें लिखी पड़ी हैं, जिन्हें जैन-धर्मकी शरणमें आनेसे सन्मार्ग और महान् पद प्राप्त हुआ है। उदाहरण-स्वरूप यहाँ पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थकी "जैनधर्मकी उदारता" नामकी पुस्तकसे कुछ उदाहरण दिये

जाते हैं :—

(१) "अनंगसेना नामकी वेश्याने वेश्यावृत्ति छोड़कर जैनदीक्षा ग्रहणकी और स्वर्ग गई। (२) यशोधर मुनिने मछली खानेवाले मृगसेन धीवरको व्रत ग्रहण कराये जिसके प्रभावसे वह मरकर श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ। (३) ज्येष्ठा आर्यिकाने एक मुनिसे शीलभ्रष्ट होने पर पुत्र प्रसव किया, फिर भी वह प्रायश्चित द्वारा शुद्ध होकर तप करके स्वर्ग गई। (४) राजा मधु अपने माण्डलिक राजाक स्त्रीको अपने यहाँ बलात् रखकर विषय भोग करता रहा, फिर भी वे दोनों मुनि-दान देते थे और अन्तमें दोनों ही दीक्षा लेकर स्वर्ग गये। (५) शिवभूति ब्राह्मणकी पुत्री देववतीकेसाथ शम्भूने व्यभिचार किया, बादमें वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर दीक्षा लेकर स्वर्ग गई। (६) वेश्या-लम्पटी अंजन चोर उसी भवसे सद्गतिको प्राप्त हुआ। (७) माँसभक्षी मृगध्वज और मनुष्यभक्षी शिवदास भी मुनि होकर महान पदको प्राप्त हुए। (८) अग्निभूत मुनिने चाण्डालकी अन्धी लड़कीको श्राविकाके व्रत ग्रहण कराये। वही तीसरे भवमें सुकुमाल हुई थी। (९) पूर्णभद्र और मानभद्र दो वैश्य पुत्रोंने एक चाण्डालको श्रावकके व्रत ग्रहण कराये, जिसके प्रभावसे वह मर कर १६ वें स्वर्गमें ऋद्धिधारी देव हुआ। (१०) म्लेच्छकन्या जरासे भगवान् नेमिनाथके चाचा बसुदेवने विवाह किया, जिससे जरत्कुमार हुआ जरत्कुमारने मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। (११) महाराजा श्रेणिक पहले बौद्ध थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिंसा करते थे, मगर जैन हुए तब शिकार आदि व्यसन त्यागकर जैन-धर्मके प्रतिष्ठित अनुयायी कहलाये। (१२) विद्युतचोर चोरोंका सरदार होने पर भी जम्बूस्वामीके

साथ मुनि होगया और तप करके सर्वार्थसिद्धि गया। वेश्यागामी चारुदत्त भी मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि गये। (१३) यमपाल चाण्डाल जैन-धर्मकी शरणमें आनेसे देवों द्वारा पूजनीय हुआ।" (पृ० ११ और ४३)

इन पौराणिक उदाहरणोंके अतिरिक्त अनेक दीक्षा प्रणालीके ऐतिहासिक उदाहरण भी मिलते हैं :—

वि० सं० ४०० वर्ष पूर्व ओसिया नगर (राजपूताना) में पमार राजपूत और अन्य वर्णके मनुष्य रहते थे। सब वाममार्गी थे और माँस मदिरा खाते थे, उन सबको लाखोंकी संख्यामें श्री० रत्नप्रभुसूरिने जैन-धर्ममें दीक्षित किया। ओसिया नगर निवासी होनेके कारण वह सब ओसवाल कहलाये। फिर राजपूतानेमें जितने भी जैन-धर्ममें दीक्षित हुए, वह सब ओसवालोंमें सम्मलित होते गये।

संवत् ६५४ में श्री० उद्योतसूरिने उज्जैनके राजा भोजकी सन्तानको (जो अब मथुरामें रहने लगे थे और माथुर कहलाते थे) जैन बनाया और महाजनोंमें उनका रोटी-बेटी सम्बन्ध स्थापित किया।

सं० १२०६ में श्री० वर्द्धमानसूरिने चौहानोंको और सं० ११७६ में जिनवल्लभसूरिने परिहार राजपूत राजाको और उसके कायस्थ मंत्रीको जैन-धर्ममें दीक्षित किया और लूटमार करने वाले खींची राजपूतोंको जैन बनाकर सन्मार्ग बताया।

जिनभद्रसूरिने राठौड़ राजपूतों और परमार राजपूतोंको संवत् ११६७ में जैन बनाया।

संवत् १२६६ में जिनदत्तसूरिने एक यदुवंशी राजाको जैन बनाया। ११६८ में एक भाटी राजपूत राजाको जैन बनाया।

श्रीजिनसेनाचार्यने तोमर, चौहान, साम, चदला, ठीमर, गौड़, सूर्य, हेम, कछवाहा, सोलंकी, कुरु, गहलोत, साठा, मोहिल, आदि वंशके राजपूतोंको जैन-धर्ममें दीक्षित किया। जो सब खंडेलवाल जैन कहलाये और परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार स्थापित हुआ।

श्री० लोहचार्यके उपदेशसे लाखों अग्रवाल फिरसे जैन-धर्मी हुये।

इस प्रकार १६ वीं शताब्दी तक जैनाचार्यों द्वारा भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें करोड़ोंकी संख्यामें जैन-धर्ममें दीक्षित किये गये।

इन नव दीक्षितोंमें सभी वर्णोंके और सभी श्रेणीके राजा-रंक सदाचारी दुराचारी मानव शामिल थे। दीक्षित होनेके बाद कोई भेद-भाव नहीं रहता था।

उक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट होजाता है कि जैन-धर्मका क्षेत्र कितना व्यापक और महान् है। उसमें कीट-पतंग, जीव-जन्तु, पशु और मनुष्य सभीके उत्थानकी महान् शक्ति है। सभीको उसकी कल्पतरु शाखाके नीचे बैठकर सुख-शान्ति प्राप्त करनेका अधिकार है। जैन-धर्म किसी वर्ग-विशेष या जाति विशेष की मीरास नहीं है। जैन-धर्मके मन्दिरोंमें सभी समान रूपसे दर्शन और पूजनार्थ जाते थे। इस सम्बन्धका उल्लेख श्रीजिनसेनाचार्य विरचित हरिवंश पुराणके २६वें सर्गमें पाया जाता है, जो कि श्रद्धेय पं० जुगलकिशोरजी कृत 'विवाह-क्षेत्र-प्रकाश' नामकी पुस्तकसे उद्धृत करके पाठकोंके अवलोकनार्थ यहाँ दिया जाता है :—

"सस्त्रीकाःखेचरा याताः सिद्धकूटजिनालयम्।
एकदा वंदितुं सोपि शौरिर्मदनवेगया ॥२॥
कृत्वा जिनमहं खेटाः प्रवन्द्य प्रतिमागृहम्।

तस्थुः स्तंभानुपाश्रित्य बहुवेषा यथायथम् ॥३॥
विद्युद्वेगोपि गौरीणां विद्यानां स्तंभमाश्रितः।
कृतपूजास्थितः श्रीमान्स्वनिकायपरिष्कृतः ॥४॥
पृष्टया वसुदेवेन ततो मदनवेगया।
विद्याधरनिकायास्ते यथास्वमिति कीर्तिताः ॥५॥

❀ ❀ ❀ ❀

अमी विद्याधरा ह्यार्याः समासेन समीरितः।
मातंगानामपि स्वामिन्निकायान् शृणु वच्मि ते ॥१४॥
नीलांबुदचयश्यामा नीलांबरवरस्रजः।
अमी मातंगनामानो मातंगस्तंभसंगताः ॥१५॥
श्मशानास्थिकृत्तोत्तंसा भस्मरेणुविधूसराः।
श्मशाननिलयास्त्वेते श्माशानस्तंभमाश्रिताः ॥१६॥
नीलवैडूर्यवर्णानि धारयंत्यंवराणि ये।
पाण्डुरस्तंभमेत्यामी स्थिताः पाण्डुकखेचराः ॥१७॥
कृष्णाजिनधरास्त्वेते कृष्णचर्माम्बरस्रजः।
कानीलस्तंभमध्येत्य स्थिताः कालश्वपाकिनः ॥१८॥
पिंगलैर्मूर्ध्वजैर्युक्तास्तप्तकांचनभूषणाः।
श्वपाकिनां च विद्यानां श्रिताःस्तंभं श्वपाकिनः ॥१९॥
पत्रपर्णांशुकच्छन्न-विचित्रमुकुटस्रजः।
पार्वतेया इति ख्याता पार्वतंभमाश्रिताः ॥२०॥
वंशीपत्रकृतोत्तंसाः सर्वर्तुकुसुमस्रजः।
वंशस्तंभाश्रिताश्चैते खेटा वंशालया मताः ॥२१॥

महाभुजगशोभांकसंदष्टवर भूषणाः ।
वृक्षमूलमहास्तंभमाश्रिता वार्क्षमूलकाः ॥२२॥
स्ववेषकृतसंचाराः स्वचिह्नकृतभूषणाः ।
समासेन समाख्याता निकायाः खचरोद्गताः ॥ २३ ॥
इति भार्योपदेशेन ज्ञातविद्याधरान्तरः ।
शौरिर्यातो निजं स्थानं खेचराश्च यथायथम् ॥ २४ ॥

इन पद्योंका अनुवाद प० गजाधरलालजीने, अपने भाषा *हरिवंशपुराण में, निम्न प्रकार दिया है :—

"एक दिन समस्त विद्याधर अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ सिद्धकूट चैत्यालयकी वंदनार्थ गये । कुमार (वसुदेव) भी प्रियतमा मदनवेगा-के साथ चल दिये ॥ २ ॥ सिद्धकूट पर जाकर चित्र विचित्र वेषोंके धारण करने वाले विद्याधरोंने सानन्द भगवान्की पूजाकी, चैत्यालय-को नमस्कार किया एवं अपने अपने स्तम्भोंका सहारा ले जुदे २ स्थानों पर बैठ गये ॥ ३ ॥ कुमारके श्वसुर विद्युद्वेगने भी अपने जातिके गौरिक निकायके विद्याधरोंके साथ भले प्रकार भगवान्की पूजा की और अपनी गौरीविद्याओंके स्तम्भका सहारा ले बैठ गये ॥ ४ ॥ कुमारको विद्याधरोंकी जातिके जाननेकी उत्कण्ठा हुई; इसलिये उन्होंने उनके विषयमें प्रियतमा मदनवेगासे पूछा और मदनवेगा यथायोग्य विद्याधरोंकी जातियोंका इस प्रकार वर्णन करने लगी—

* * * *

** देखो, इस हरिवंशपुराण का सन् १९१६ का छपा हुआ संस्करण, पृष्ठ २८४, २८५ ।*

"प्रभो ! ये जितने विद्याधर हैं वे सब आर्य जातिके विद्याधर हैं, अब मैं मातङ्ग [अनार्य] जातिके विद्याधरोंको बतलाती हूँ आप ध्यानपूर्वक सुनें—

"नील मेघके समान श्याम नीली माला धारण किये मातङ्ग स्तम्भके सहारे बैठे हुए, ये मातङ्गजातिके विद्याधर हैं ॥ १४-१५ ॥ मुर्दोंकी हड्डियोंके भूषणोंसे भूषित भस्म (राख) की रेणुओंसे भदमैले और श्मशान [स्तम्भ] के सहारे बैठे हुए ये श्मशान जातिके विद्याधर हैं ॥ १६ ॥ वैडूर्यमणिके समान नीले नीले वस्त्रोंको धारण किये पाँडुर स्तम्भके सहारे बैठे हुए ये पाँडुक जातिके विद्याधर हैं ॥ १७ ॥ काले काले मृग चर्मोंको ओढ़े काले चमड़ेके वस्त्र और मालाओंको धारे कालस्तम्भका आश्रय लेकर बैठे हुए ये कालश्वपाकी जातिके विद्याधर हैं ॥ १८ ॥ पीले वर्णके केशोंसे भूषित, तप्त सुवर्णके भूषणोंके श्वपाक विद्याओंके स्तम्भके सहारे बैठने वाले ये श्वपाक जातिके विद्याधर हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंके पत्तोंके समान हरे वस्त्रोंके धारण करने वाले, भाँति भाँतिके मुकुट और मालाओंके धारक, पर्वतस्तम्भका सहारा लेकर बैठे हुए पार्वतेय जातिके विद्याधर हैं ॥ २० ॥ जिनके भूषण बाँसके पत्तोंके बने हुए हैं जो सब ऋतुओंके फूलोंकी माला पहिने हुए हैं और वंशस्तम्भके सहारे बैठे हुए हैं, वे वंशालय जातिके विद्याधर हैं ॥ २१ ॥ महासर्पके चिह्नोंसे युक्त उत्तमोत्तम भूषणोंको धारण करने वाले वृक्षमूल नामक विशाल स्तम्भके सहारे बैठे हुए ये वार्क्षमूलक जातिके विद्याधर हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार रमणी मदनवेगा द्वारा अपने अपने वेष और चिह्न युक्त भूषणोंसे विद्याधरोंका भेद

जान कुमार अति प्रसन्न हुए और उसके साथ अपने स्थानको वापिस चले आये एवं अन्य विद्याधर भी अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥ २३-२४ ॥

इस उल्लेख पर से इतना ही स्पष्ट मालूम नहीं होता कि मातङ्ग जातियोंके चाण्डाल लोग भी जैनमन्दिरमें जाते और पूजन करते थे, बल्कि यह भी मालूम होता है कि *श्मशान भूमिकी हड्डियोंके आभूषण पहिने हुए, वहाँकी राख बदनसे मले हुए, तथा मृगछाला ओढ़े, चमड़ेके वस्त्र पहिने और चमड़ेकी मालाएँ हाथमें लिये हुए भी जैन मन्दिरमें जा सकते थे, और न केवल जा ही सकते थे बल्कि अपनी शक्ति और भक्तिके अनुसार पूजा करनेके बाद उनके वहाँ बैठनेके लिये स्थान भी नियत था, जिससे उनका जैनमन्दिरमें जाने का और भी ज़्यादा नियत अधिकार पाया जाता है †। जान पड़ता है उस समय 'सिद्धकूट-जिनालय' में प्रतिमागृहके सामने एक बहुत बड़ा विशाल मंडप होगा और उसमें स्तम्भोंके विभागसे सभी आर्य-अनार्य जातियोंके लोगोंके बैठनेके लिये जुदाजुदा स्थान नियत कर रक्खे होंगे। आजकल जैनियोंमें उक्त सिद्धकूट जिनायलके ढङ्गका—उसकी नीति का अनुसरण करनेवाला—एक भी जैनमन्दिर नहीं है।

* *यहाँ इस उल्लेख परसे किसीको यह समझनेकी भूल न करनी चाहिये कि लेखक आजकल ऐसे अपवित्र वेषमें जैनमन्दिरोंमें जानेकी प्रवृत्ति चलाना चाहता है।*

† *देखो, इस हरिवंशपुराणका सन् १९१६ का छपा हुआ संस्करण, पृष्ठ २८४, २८५।*

लोगोंने बहुधा जैनमन्दिरोंको देवसम्पत्ति न समझकर अपनी घरू सम्पत्ति समझ रक्खा है, उन्हें अपनी ही चहल-पहल तथा आमोद-प्रमोदादिके एक प्रकारके साधन बना रक्खे हैं, वे प्रायः उन महौदार्य-सम्पन्न लोकपिता वीतराग भगवान्के मन्दिर नहीं जान पड़ते जिनके समवशरण-में पशु तक भी जाकर बैठते थे, और न वहाँ मूर्तिको छोड़कर, उन पूज्य पिताके वैराग्य, औदार्य तथा साम्यभावादि गुणोंका कहीं कोई आदर्श ही नज़र आता है। इसीसे वे लोग उनमें चाहे जिस जैनीको आने देते हैं और चाहे जिसको नहीं। ऐसे सब लोगोंको खूब याद रखना चाहिये कि दूसरोंके धर्म-साधन में विघ्न करना—बाधक होना—उनका मन्दिर जाना बन्द करके उन्हें देवदर्शन आदि से विमुख रखना, और इस तरह पर उनकी आत्मोन्नतिके कार्यमें रुकावट डालना बहुत बड़ा भारी पाप है। अंजना सुंदरीने अपने पूर्व जन्ममें थोड़े ही कालके लिये, जिनप्रतिमाको छिपाकर, अपनी सोतनके दर्शन पूजनमें अन्तराय डाला था। जिसका परिणाम यहाँ तक कटुक हुआ कि उसको अपने इस जन्म में २२ वर्ष तक पतिका दुःसह वियोग सहना पड़ा और अनेक संकट तथा आपदाओंका सामना करना पड़ा, जिनका पूर्ण विवरण श्री-रविषेणाचार्यकृत 'पद्म-पुराण' के देखनेसे मालूम हो सकता है। श्रीकुंद-कुंदाचार्यने, अपने 'रयणसार' ग्रंथमें यह स्पष्ट बतलाया है कि—'दूसरों-के पूजन और दानकार्यमें अन्तराय (विघ्न) करनेसे जन्मजन्मान्तरमें क्षय, कुष्ट, शूल, रक्तविकार, भगन्दर, जलोदर, नेत्रपीड़ा, शिरोवेदना आदिक रोग तथा शीत-उष्ण (सरदी गरमी) के आताप और (कुयोनियों-में) परिभ्रमण आदि अनेक दुःखोंकी प्राप्ति होती है।' यथा—

खयकुट्ठसूलमूलो लोयभगंदरजलोदरक्खिसिरो-
सीदुएहवल्लराई पूजादाणंतरायकम्मफलं ॥३३॥

इसलिए जो कोई जाति-बिरादरी अथवा पञ्चायत किसी जैनीको जैन मन्दिरमें न जाने अथवा जिनपूजादि धर्म कार्योंसे वंचित रखनेका दण्ड देती है वह अपने अधिकारका अतिक्रमण और उल्लंघन ही नहीं करती बल्कि घोर पापका अनुष्ठान करके स्वयं अपराधिनी बनती है।"

—विवाह-क्षेत्र प्रकाश पृष्ठ ३१ से ३६।

जैन-धर्मके मान्य ग्रन्थोंमें इतना स्पष्ट और विशद विवेचन होने पर भी उसके अनुयायी आज इतने संकीर्ण और अनुदार विचारके क्यों हैं ? इसका एक कारण तो यह है कि, वर्तमानमें जैनधर्मके अनुयायी केवल वैश्य रह गए हैं, और वैश्य स्वभावतः कृपण तथा क़ीमती वस्तुको प्रायः छुपाकर रखनेवाले होते हैं। इसलिए प्राणोंसे भी अधिक मूल्यवान् धर्मको खुदके उपयोगमें लाना तथा दूसरोंको देना तो दूर, अपने बन्धुओंसे भी छीन-झपट कर उसे तिजोरीमें बन्द रखना चाहते हैं। उनका यह मोह और स्वभाव उन्हें इतना विचारनेका अवसर ही नहीं देता कि धर्मरूपी सरोवर बन्द रखनेसे शुष्क और दुर्गन्धित होजायगा। वैश्योंसे पूर्व जैन-सघकी बागडोर क्षत्रियोंके हाथमें थी। वे स्वभावतः दानी और उदार होते हैं। इसलिए उन्होंने जैनधर्म जितना दूसरोंको दिया, उतना ही उसका विकास हुआ। भारतके बाहर भी जैनधर्म खूब फला-फूला। जैनधर्मको जबसे क्षत्रियोंका आश्रय हटकर वैश्योंका आश्रय मिला, तबसे वह क्षीर-सागर न रहकर गाँवका पोखर-तालाब बन गया है। उसमें भी साम्प्रदायिक और पार्टियोंके भेद-उपभेद रूपी कीटाणुओंने सड़ाँद (महादुर्गन्ध)

उत्पन्न करदी है, जिसके कारण कोई भी बाहरी आदमी उसके पास तक आनेका साहस नहीं करता।

यह ठीक है कि अपराध करने पर दण्ड दिया जाय—इसमें किसीको विवाद नहीं, परन्तु दण्ड देनेकी प्रणालीमें अन्तर है। एक कहते हैं—अपराधीको धर्मसे प्रथक कर दिया जाय, यही उसकी सज़ा है, उसके संसर्गसे धर्म अपवित्र हो जायगा। दूसरे कहते हैं— जैसे भी बने धर्म-च्युतको धर्ममें स्थिर करना चाहिए, जिससे वह पुनः सन्मार्ग पर लगजाय। ऐसा न करनेसे अनाचारियोंकी संख्या बढ़ती चली जायगी और फिर धर्मनिष्ठोंका रहना दूभर हो जायगा। भला जिस प्रतिमाका गन्धोदक लगानेसे अपवित्र शरीर पवित्र होते हैं, वही प्रतिमा अपवित्रोंके छूनेसे अपवित्र क्योंकर हो सकती है? जिस अमृतमें संजीवनी शक्ति व्याप्त है, वह रोगीके छूनेसे विष कैसे हो सकता है? रोगीके लिए ही तो अमृतकी आवश्यकता है, पारस पत्थर लोहेको सोना बना सकता है—लोहेके स्पर्शसे स्वयं लोहा नहीं बनता।

खेद है कि हम सब कुछ जानते हुए भी अन्ध-प्रणालीका अनुसरण कर रहे हैं। एक वे भी जातियाँ हैं जो राजनैतिक और धार्मिक अधिकार पानेके लिए हर प्रकारके प्रयत्न और हरेक ढंगसे दूसरोंको अपनाकर अपनी संख्या बढ़ाती जा रही हैं, और एक हमारी जाति है जो बढ़ना तो दूर निरन्तर घटती जा रही है। भारतके सात करोड़ अछूतोंकी जब हिन्दूधर्म छोड़ देनेकी अफ़वाह उड़ी तो, मिस्रसे मुसलमान, अमेरिकासे ईसाई, जापानसे बौद्ध और पंजाबसे सिक्ख प्रतिनिधि, अछूतोंके पास पहुँचे और सबने अपने अपने धर्मोंमें उन्हें दीक्षित करनेका प्रयत्न किया; किन्तु

जैनियोंकी ओरसे प्रतिनिधि पहुँचना तो दरकिनार, ऐसी आशा रखना भी व्यर्थ साबित हुआ।

लेखानुसार जैन-समाजसे २२ जैनी प्रतिदिन घटते जारहे हैं और हम उफ़ तक भी नहीं करते—चुप-चाप साम्यभावसे देख रहे हैं। एक भी सह-धर्मीके घटने पर जहाँ हमारा कलेजा तड़प उठना चाहिये था—जबतक उसकी पूर्ति न करलें, तबतक चैन नहीं लेना चाहिये था—वहाँ हम निश्चिन्त बैठे हुए हैं! देवियोंके अपहरण और पुरुषोंके धर्म-विमुख होनेके समाचार नित्य ही सुनते हैं और सिर धुन कर रह जाते हैं! सच बात तो यह है कि ये सब कांड अब इतनी अधिक संख्यामें होने लगे हैं कि उनमें हमें कोई नवीनता ही दिखाई नहीं देती—हमारी आँखें और कान इन सब बातों के देखने सुननेके अभ्यस्त हो गये हैं।

जैन-समाजकी इस घटतीका ज़िम्मेवार कौन है ? जैन-समाजके मिटानेका यह कलङ्क किसके सिर मढ़ा जायगा ? वास्तवमें जैन-समाज-की घटतीके ज़िम्मेवार वे हैं, जिन्होंने समाजकी उत्पादन-शक्तिको क्षीण करके उसका उत्पत्ति स्रोत बन्द किया है और मिटानेका कलंक उनके सर मढ़ा जायगा, जिन्होंने लाखों भाइयोंको जाति-च्युत करके धर्म-विमुख कर दिया है और रोज़ाना किसी न किसी भाईको समाजसे बाहर निकाल रहे हैं।

हायरे अनोखे दण्ड-विधान !!! तनिक किसीसे जाने या अनजाने-में भूल हुई नहीं कि वह समाज से पृथक्! मन्दिरमें दर्शन करते हुए ऊपरसे कबूतरका अण्डा गिरा नहीं कि उपस्थित सब दर्शनार्थी जातिसे खारिज ! गाड़ीवानकी असावधानीसे पहियेके नीचे कुत्ता दब कर

मर गया और गाड़ीमें बैठी हुई सारी सवारियाँ जातिसे च्युत ! क्रोधावेशमें स्त्री कुएँमें गिरी और उसके कुटुम्बी जातिसे खारिज ! किसी पुरुषने किसी विधवा या सधवा स्त्रीपर दोषारोप किया नहीं कि उस स्त्री सहित सारे कुटुम्बी समाजसे बाहर !!

उक्त घटनाएँ कपोलकल्पित नहीं, बुन्देलखण्डमें, मध्यप्रदेशमें, और राजपूतानेमें, ऐसे बदनसीब रोज़ाना ही जातिसे निकाले जाते हैं। कारज या नुक्ता न करने पर अथवा पंचोंसे द्वेष होजाने पर भी समाजसे पृथक होना पड़ता है। स्वयं लेखकने कितनी ही ऐसी कुल-वधुओंकी आत्म-कथाएँ सुनी हैं जो समाजके अत्याचारी नियमोंके कारण दूसरोंके घरोंमें बैठी हुई आहें भर रही हैं। जाति-बहिष्कारके भयने मनुष्योंको नारकी बना दिया है। इसी भयके कारण भ्रूणहत्याएँ, बालहत्याएँ, आत्म-हत्याएँ—जैसे अधर्म-कृत होते हैं तथा स्त्रियाँ और पुरुष विधर्मियोंके आश्रय तकमें जानेको मजबूर किये जाते हैं।

नशा पिलाके गिराना तो सबको आता है।
मज़ा तो तब है कि गिरतोंको थामलें साक़ी ॥ —इक़बाल

गिरते हुओंको ठोकर मार देना, मुसीबतज़दोंको और चर्का लगा देना, बेऐबों को ऐब लगा देना, भूले हुओंको गुमराह कर देना, नशा पिलाके गिरा देना, आसान है और यह कार्य तो प्रायः सभी कर सकते हैं, किन्तु पतित होते हुए—गिरते हुए—को सम्हाल लेना, बिगड़ते हुएको बना देना, धर्म-विमुखको धर्मारूढ़ करना, विरलोंका ही काम है। और यही बिरलेपनका कार्य जैनधर्म करता रहा है तभी तो वह पतित-पावन और अशरण-शरण कहलाता रहा है।

जब जैन-धर्मको राज-आश्रय नहीं रहा और इसके अनुयायियोंको चुन-चुन कर सताया गया। उनका अस्तित्व खतरेमें पड़ गया, तब नव-दीक्षित करनेकी प्रणालीको इसलिए स्थगित कर दिया गया, ताकि राजधर्म-पोषित जातियाँ अधिक कुपित न होने पाएँ और जैनधर्मानुयायियोंसे शूद्रों तथा म्लेच्छों जैसा व्यवहार न करने लगें? नास्तिक और अनार्य जैसे शब्दोंसे तो वे पहले ही अलंकृत किये जाते थे। अतः पतित और निम्न श्रेणीके लिये तो दरकिनार जैनेतर उच्च वर्गके लिये भी जैनधर्मका द्वार बन्द कर दिया गया! द्वार बन्द न करते तो और करते भी क्या? जैनोंको ही बलात् जैनधर्म छोड़नेके लिये जब मजबूर किया जा रहा हो, शास्त्रोंको जलाया जा रहा हो, मन्दिरोंको विध्वंस किया जा रहा हो, तब नव-दीक्षा-प्रणालीका स्थगित कर देना ही बुद्धिमत्ताका कार्य था। उस समय राज्य-धर्म—ब्राह्मणधर्म—जनताका धर्म बन गया। उसकी संस्कृति आदिका प्रभाव जैनधर्म पर पड़ना अवश्यम्भावी था। बहुसंख्यक, बलशाली और राज्यसत्ता वाली जातियोंके आचार-विचारकी छाप अन्य जातियों पर अवश्य पड़ती है। अतः जैन समाजमें भी धीरे-धीरे धार्मिक-संकीर्णता एवं अनुदारताके कुसंस्कार घर कर गए। उसने भी दीक्षा-प्रणालीका परित्याग करके जातिबहिष्कार-जैसे घातक अवगुणको अपना लिया! जो सिंह मजबूरन भेड़ोंमें मिला था, वह सचमुच अपनेको भेड़ समझ बैठा!!

वह समय ही ऐसा था, उस समय ऐसा ही करना चाहिए था; किन्तु अब वह समय नहीं है। अब धर्मके प्रसारमें किसी प्रकारका

खतरा नहीं है। धार्मिक पक्षपात और मज़हबी दीवानगीका समय बहगया। अब हरएक मनुष्य सत्यकी खोजमें है। बड़ी सरलतासे जैनधर्मका प्रसार किया जा सकता है। इससे अच्छा अनुकूल समय फिर नहीं प्राप्त हो सकता। जितने भी समाजसे बहिष्कृत समझे जा रहे हैं, उन्हे गले लगाकर पूजा प्रक्षालका अधिकार देना चाहिए। और नवदीक्षाका पुराना धार्मिक रिवाज पुनः जारी कर देना चाहिए। वर्त्तमानमें सराक, कलार आदि कई प्राचीन जातियाँ लाखोंकी संख्यामें हैं, जो पहले जैन थीं और अब मर्दुम शुमारीमें जैन नहीं लिखी जाती हैं, उन्हे फिरसे जैनधर्ममें दीक्षित करना चाहिए। इनके अलावा महावीरके भक्त ऐसे लाखों गूजर मीने आदि हैं जो महावीरके नाम पर जान दे सकते हैं, किन्तु वह जैनधर्मसे अनभिज्ञ हैं वे प्रयत्न करने पर—उनके गाँवोंमें जैन रात्रिपाठशालाएँ खोलने पर—आसानीसे जैन बनाए जा सकते हैं। हमारे मन्दिरों और संस्थाओंमें लाखों नौकर रहते हैं मगर वह जैन नहीं हैं। जैनोंको छोड़कर संसार-के प्रत्येक धार्मिक स्थानमें उसी धर्मका अनुयायी रह सकता है, किन्तु जैनोंके यहाँ उनकी कई पुश्तें गुजर जाने पर भी वे अजैन बने हुए हैं। उनको कभी जैन बनानेका विचार तक नहीं किया गया। जलमें रहकर मछली प्यासी पड़ी हुई है।

जिन जातियोंके हाथका छुआ पानी पीना अधर्म समझा जाता हैं, उनमें लोग धड़ाधड़ मिलते जा रहे हैं। फिर जो जैन-समाज खान, पान रहन, सहनमें आदर्श है, उच्च है और अनेक आकर्षित उसके पास साधन हैं, साथ ही जैनधर्म जैसा सन्मार्ग प्रदर्शक धर्म है; तब उसमें

सम्मिलित होनेमें लोग अपना सौभाग्य क्यों नहीं समझेंगे ?

ज़माना बहुत नाजुक होता जा रहा है। सबल निबलोंको खाए जा रहे हैं। बहुसंख्यक जातियाँ अल्पसंख्यक जातियोंके अधिकारोंको छीनने और उन्हें कुचलनेमें लगी हुई हैं। बहुमतका बोलबाला है। जिधर बहुमत है उधर ही सत्य समझा जा रहा है। पंजाब और बंगालमें मुस्लिम मिनिस्ट्री है, मुस्लिम बहुमत है तो हिंदुओंके अधिकारों-को कुचला जारहा है, जहाँ कांग्रेसका बहुमत है वहाँ उसका बोलबाला है। जिनका अल्पमत है वे कितना ही चीखें चिल्लाएँ, उनकी सुनवाई नहीं हो सकती। इसलिये सभी अपनी संख्या बढ़ाने में लगे हुए हैं। समय रहते हमें भी चेत जाना चाहिए। क्या हमने कभी सोचा है कि जिस तरह हिन्दू-मुसलमानों या सिक्खोंके साम्प्रदायिक संघर्ष होते रहते हैं, यदि उसी प्रकार कोई जाति हमें मिटानेको भिड़बैठी, तब उस समय हमारी क्या स्थिति होगी ? वही न, जो आज यहूदियों और अन्य अल्पसंख्यक निर्बल जातियोंकी हो रही है ? अतः हमें अन्य लोगोंकी तरह अपनी एक ऐसी सुसंगठित संस्था खोलनी चाहिए जो अपने लोगोंका संरक्षण एवं स्थितिकरण करती हुई दूसरोंको जैनधर्ममें दीक्षित करनेका सातिशय प्रयत्न करे।

आशा है मेरे इस निवेदनकी उपयोगिता पर शीघ्र ही ध्यान दिया जायगा और जैनसमाजकी संख्या वृद्धिका भरसक प्रयत्न किया जायगा।

१ दिसम्बर १९३८